**ओ३म्**

**‘एक ईश्वर, एक संसार और एक ही मनुष्य जाति विषय पर कुछ विचार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 यह संसार पृथिवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश का जीवों के सुख-दुःख के उपयोग की दृष्टि से समुपयुक्त मिश्रित रूप है। वैदिक मान्यताओं के अनुसार संसार को बने हुए 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार 115 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस अवधि में हमने संसार को बांट-बांट कर इस पर दो सौ से अधिक देश बना दिये हैं। इन सभी देशों में भिन्न-भिन्न भाषायें, संस्कृतियां, सभ्यतायें, रीति-रिवाज, धर्म, मत, पंथ, सम्प्रदाय आदि हैं। हमें लगता है कि संसार के बांटने के प्रयास तो बहुत हुए परन्तु बटे हुए भूभागों को जोड़ने वा मिलाने के प्रयास न के बराबर हुए हैं। यदि किसी ने इस प्रश्न को उठाया तो उस पर लोगों का ध्यान या तो गया ही नहीं या समकालीन लोगों ने उसकी उपेक्षा की। हमें लगता है कि आज का संसार मनुष्य जीवन के उद्देश्य व लक्ष्यों के प्रति अधिकांशतः अनभिज्ञ है और उसने सत्य लक्ष्य व उद्देश्यों की उपेक्षा कर केवल सुख के भौतिक साधनों को ही अपना लक्ष्य व उद्देश्य बना लिया है जो कि सत्य से कोसों दूर है। इस सन्दर्भ में विचार करने पर हमें यह तथ्य स्पष्ट होता है कि मनुष्यों ने विगत लगभग 2 अरब वर्षों में पृथिवी को तो बांटा परन्तु वह अन्य चार प्रमुख तत्वों अग्नि, जल, वायु और आकाश को बांटने में सफल नहीं हुए। भारत, पाकिस्तान और चीन को यदि हम लें तो भारत की उष्णता व शीतलता का प्रभाव अन्य दो देशों में और वहां का प्रभाव भारत पर अग्नि संचरण के सिद्धान्त के आधार पर पड़ता है। इसी प्रकार से भारत की वायु अन्य देशों में व वहां की वायु भारत में वायु के प्रवाह की दिशा व भिन्न-भिन्न स्थानों के तापक्रम के अनुसार बहती व संचरण करती है। जल का मुख्य स्रोत समुद्र और नदियां आदि हैं। आज भी अनेक नदियां इन तीनों देशों में बहती है और कुछ ऐसी भी नदियां हैं जिनका उद्गम एक देश में है और उसका जल दूसरे दूशों में भी बह कर जाता है जिससे दोनों ही देश समान रूप से लाभान्वित हो रहे हैं। समुद्र में सूर्य की उष्णता से जो वाष्प बनती है वह सभी देशों में जाकर समान रूप से बिना पक्षपात वर्षा करती है। आकाश भी बंटा हुए कहते अवश्य हैं परन्तु वह बटा हुआ इस कारण से नहीं है कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है और अपनी धूरी पर भी घूमती है। आकाश गति नहीं करता, इस कारण सभी देशों का आकाश पृथिवी के भ्रमण के कारण चैबीस घंटे में हर पल व हर क्षण बदलता रहता है। इससे क्या शिक्षा मिलती है? यह विचारणीय है। इससे यही शिक्षा मिलती प्रतीत होती है कि यह पृथिवी ईश्वर द्वारा उत्पन्न सभी मनुष्य व प्राणियों के भोग के लिए बनाई गई है। ईश्वर ने पृथिवी पर एक देश बनाया था परन्तु उसकी योग्य व अयोग्य सन्तानों ने इसके टुकड़े कर दिये हैं। ईश्वर ने इसे किसी एक मनुष्य, मत, सम्प्रदाय, धर्म आदि के पृथिवी व सृष्टि को नहीं बनाया। इसका मालिक ईश्वर व केवल ईश्वर है, न कि किसी मत के लोग व आचार्य आदि हैं। इस तथ्य को सभी मतों के आचार्यों व अनुयायियों को समझना चाहिये और वेदों व सत्शास्त्रों का अध्ययन कर ईश्वर की इच्छा को जानने का प्रयास करना चाहिये। उसके अनुसार आचरण करना चाहिये जिससे यह सृष्टि आजकल नरक का धाम न होकर सुख व स्वर्गधाम बन जाये।

 इस लेख को लिखने का हमारा अभिप्राय यह है कि संसार के सभी बुद्धिजीवी व पठित व्यक्ति इस सृष्टि के कर्त्ता ईश्वर व सृष्टि रचना के उसके उद्देश्य को सच्ची भावना व स्वार्थों से ऊपर उठकर जानने का प्रयास करें। इस कार्य में उन्हें विचार व चिन्तन करने के साथ प्राचीन वैदिक साहित्य की सहायता लेकर इन प्रश्नों को हल करना चाहिये। मनुष्य जीवन का उद्देश्य बताते हुए वेदों के मर्मज्ञ विद्वान स्वामी दयानन्द ने कहा है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य सत्य व असत्य का निर्णय करने व कराने के लिए है, परस्पर लड़ाई-बखेड़ा करने के लिए नहीं है। यह बात सभी बु़िद्धजीवियों की दृष्टि में सत्य है परन्तु इस पर आचरण शायद ही कोई करता हो अन्यथा संसार की स्थिति ऐसी न होती जैसी की वर्तमान में है।

 हम पाठकों का ध्यान स्वामी दयानन्द जी द्वारा की गई मनुष्य की परिभाषा पर भी दिलाना चाहते हैं। वह लिखते हैं कि **‘मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं, कि चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको (यथार्थ मनुष्य को) कितना ही दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप-धर्म से पृथक कभी न होवे।’** स्वामी दयानन्द जी ने इन पंक्तियों में मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार व कर्तव्यों को चित्रित किया है। संसार के साहित्य में इस परिभाषा व शब्दों को हम अद्वितीय व मनुष्य की परिभाषा को सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा कह सकते हैं। यह सब उनके वेदों के उच्च. कोटि के ज्ञान के कारण सम्भव हुआ है। इससे वेदों के ज्ञान व शिक्षा की दशा व दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है।

हमने इस लेख में कुछ विषयों वा बिन्दुओं पर विचार किया है। आशा है कि पाठक इसे उपयोगी पायेंगे। महर्षि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के चैदहवें समुल्लास के अन्तिम कुछ वाक्यों को प्रस्तुत कर हम इस लेख को विराम देते हैं। वह लिखते हैं कि **‘हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभ गुण सब मतों में अच्छे हंै और बाकी वाद, विवाद, ईष्र्या, द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो।’**

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**